

## बदला

- अज्ञेय

अंधेरे डिब्बे में जल्दी-जल्दी सामान ठेल, गोद के आबिद को खिड़की से भीतर सीट पर पटक, बड़ी लड़की जुबैदा को चढ़ा कर सुरैया ने स्वयं भीतर घुस कर गाड़ी के चलने के साथ-साथ लंबी सांस ले कर पाक परवर्दि गार को याद किया ही था कि उस ने देखा, डिब्बे के दूसरे कोने में चादर ओढ़े जो दो आकार बैठे हुए थे, वे अपने मुसलमान भाई नहीं - सिख थे ! चलती गाड़ी में स्टेशन की बत्तियों से रह-रह कर जो प्रकाश की झलक पड़ती थी, उस में उसे लगा, उन सिखों की स्थिर अपलक आँखों में अमानुषी कुछ है ! उन की दृष्टि जैसे उसे देखती है पर उस की काया पर रूकती नहीं, सीधी भेदती हुई चली जाती है - और तेज़ धार-सा एक अलगाव उन में है, जिसे जैसे कोई छू नहीं सकता, छुएगा तो कट जायेगा ! रोशनी इस के लिए काफी नहीं थी, पर सुरैया ने मानो कल्पना की दृष्टि से देखा कि उन आँखों में लाल-लाल डोरे पड़े हैं, और ... और ... वह डर से सिहर हो गयी । पर गाड़ी तेज चल रही थी, अब दूसरे डिब्बे में जाना असंभव था । कूद पड़ना एक उपाय होता, किन्तु उतनी तेज गति में बच्चे-कच्चे ले कर कूदने से किसी दूसरे यात्री द्वारा उठा कर बाहर फेंक दिया जाना क्या बहुत बदतर होगा ? यह सोचती और ऊपर से झुलती हुई खतरे की चेन के हैंडिल को देखती हुई वह अनिश्चित-सी बैठ गयी ... आगे स्टेशन पर देखा जायेगा ... एक स्टेशन तक तो कोई खतरा नहीं है - कम से कम अभी तक तो कोई वारदात इस हिस्से में हुई नहीं ...

आप कहाँ तक जायेंगी ?

सुरैया चौंकी । बड़ा सिख पूछ रहा था । कितनी भारी उस की आवाज थी ! जो शायद दो स्टेशन बाद उसे मार कर ट्रेन से बाहर फेंक देगा, वह यहाँ उसे "आप" कह कर संबोधन करे, इस की विडंबना पर वह सोचती रह गयी, और उत्तर में देर हो गयी । सिख ने फिर पूछा - "आप कितनी दूर जायेंगी ?"

सुरैया ने बुरका मुँह से उठा कर पीछे डाल रखा था, सहसा उसे मुँह पर खींचते हुए कहा, "इटावे जा रही हूँ ।"

सिख ने क्षण-भर सोच कर कहा - "साथ कोई नहीं है ?"

उस तनिक-सी देर को लक्ष्य कर के सुरैया ने सोचा, "हिसाब लगा रहा है कि कितना वक्त मिलेगा मुझे मारने के लिए ... या रब, अगले स्टेशन पर कोई और सवारियाँ आ जायें ... और साथ कोई ज़रूर बताना चाहिए - उस से शायद यह डरा रहे ! यद्यपि आज-कल के ज़माने वह सफर में साथ क्या जो डिब्बे में साथ न बैठे ... कोई छुरा भोंक दे तो अगले स्टेशन तक बैठी रहना कि कोई आकर खिड़की के सामने खड़ा होकर पूछेगा, " किसी चीज की ज़रूरत तो नहीं ... "

उस ने कहा, "मेरे भाई हैं .... दूसरे डिब्बे में ..."

आबिद ने चमक कर कहा, "कहाँ माँ ? मामू तो लाहौर गये हुए हैं । ... "

सुरैया ने उसे बड़ी ज़ोर से डपट कर कहा, "चुप रह !"

थोड़ी देर बाद सिख ने फिर पूछा, "इटावे में आप के अपने लोग हैं ? "

"हाँ ।"

सिख फिर चुप रहा। थोड़ी देर बाद बोला, "आप के भाई को आप के साथ बैठना चाहिए था; आज कल के हालात में कोई अपनों से अलग बैठता है ? "

सुरैया मन ही मन सोचने लगी कि कहीं कम्बख्त ताड़ तो नहीं गया कि मेरे साथ कोई नहीं है !

सिख ने मानो अपने - आप से ही कहा, "पर मुसीबत में किसी का कोई नहीं है, सब अपने ही अपने हैं ..."

गाड़ी की चाल धीमी हो गयी। छोटा स्टेशन था। सुरैया असमंजस में थी कि उतरे या बैठी रहे ? दो आदमी डिब्बे में और चढ़ आये - सुरैया के मन ने तुरन्त कहा, 'हिन्दु' और तब वह सचमुच और भी डर गयी, और थैली-पौटली समेटने लगी।

सिख ने कहा, "आप क्या उतरेंगी ?"

"सोचती हूँ, भाई के पास जा बैठूँ ... "

सिख ने कहा, "आप बैठी रहिए। यहाँ आपको कोई डर नहीं है। मैं आपको अपनी बहिन समझता हूँ और इन्हें अपने बच्चे ... आप को अलीगढ़ तक ठीक-ठाक मैं पहुँचा दूँगा। उस के आगे खतरा भी नहीं है, और वहाँ से आपके भाई भी गाड़ी में आ ही जायेंगे।

एक हिन्दु ने कहा, "सरदारजी, जाती है तो जाने दो न, आप को क्या ?

सुरैया न सोच पायी कि सिख की बात को, और इस हिन्दु की टिप्पणी को किस अर्थ में ले, पर गाड़ी ने चल कर फ़ैसला कर दिया। वह बैठ गयी।

हिन्दु ने पूछा, "सरदारजी, आप पंजाब से आये हो ? "

"जी।"

"कहाँ घर है आप का ? "

"शेखपुरे में था। अब यहीं समझ लीजिए ... "

"यहीं ? क्या मतलब ?

"जहाँ मैं हूँ, वहीं घर है ! रेल के डिब्बे का कोना। "

हिन्दु ने स्वर को कुछ संयत कर, जैसे गिलास में थोड़ी-सी हमदर्दी उँडेल कर सिख की ओर बढ़ाते हुए कहा, "तब तो आप शरणार्थी हैं ... "

सिख ने मानो गिलास को 'जी, मैं नहीं पीता' कह कर ठेलते हुए, एक सूखी हँसी हँस कर कहा, जिस की अनुगूँज हिन्दु महाशय के कान नहीं पकड़ सके, "जी।"

हिन्दु महाशय ने तनिक और दिलचस्पी के साथ कहा, "आप के घर के लोगों पर तो बहुत बुरी बीती होगी ..."

सिख की आँखों में एक पल के अंश-भर के लिए अंगार चमक गया, पर वह इस दाने को भी चुगने न बढ़ा। चुप रहा।

हिन्दु ने सुरैया की ओर देखते हुए कहा, "दिल्ली में कुछ लोग बताते थे, वहाँ उन्होंने क्या-क्या जुल्म किये हैं हिन्दुओं और सिखों पर। कैसी-कैसी बातें वे बताते थे, क्या बताऊँ, ज़बान पर लाते शर्म आती है। औरतों को नंगा करके ..."

सिख ने अपने पास पोटली बन कर बैठे दूसरे व्यक्ति से कहा, "काका, तुम ऊपर चढ़ कर सो रहो।" स्पष्ट ही वह सिख का लड़का था, और जब उस ने आदेश पा कर उठ कर अपने सोलह-सत्रह बरस के छरहरे बदन को अंगड़ाई में सीधा कर के ऊपरी बर्थ की ओर देखा, तब उसकी आँखों में भी पिता की आँखों का प्रतिबिंब झलक आया। वह ऊपरी बर्थ पर चढ़कर लेट गया, नीचे सिख ने अपनी टाँगें सीधी कीं और खिड़की से बाहर की ओर देखने लगा।

हिन्दु महाशय की बात बीच में रूक गयी थी, उन्होंने फिर आरंभ किया, "बाप-भाइयों के सामने ही बेटियों-भाइयों के सामने ही बेटियों-बहिनों को नंगा कर के ..."

सिख ने कहा, "बाबू साहब, हम ने जो देखा है वह आप हमीं को बतायेंगे..." इस बार वह अनुगूज पहले से ही स्पष्ट थी, लेकिन हिन्दु महाशय ने अब भी नहीं सुनी। मानो शह पा कर बोले, "आप ठीक कहते हैं ... हम लोग भला आप का दुःख कैसे समझ सकते हैं। हमदर्द हम कर सकते हैं, पर हमदर्द भी कैसी जब दर्द कितना बड़ा है यही न समझ पायें ! भला बताइए हम कैसे पूरी तरह समझ सकते हैं कि उन सिखों के मन पर क्या बीती होगी जिन की आँखों के सामने उन की बहू-बेटियों को ..."

सिख ने संयम से कांपते हुए स्वर में कहा, "बहू-बेटियाँ सब की होती हैं, बाबू सहब।"

हिन्दु महाशय तनिक-से अप्रतिभ हुए कि सरदार की बात का ठीक आशय उन की समझ में नहीं आ रहा। किन्तु अधिक देर तक नहीं। बोले, "अब तो हिन्दु-सिख भी चेतते हैं। बदला लेना बुरा है, लेकिन कहाँ तक कोई सहैगा ? इधर दिल्ली में तो उन्होंने डट कर मोर्चे लिए हैं, और कहीं-कहीं तो ईट का जवाब पत्थर से देनेवाली मसल सच्ची कर दिखायी है। सच पूछो तो इलाज ही यही है। सुना है करोलबाग में किसी मुसलमान डाक्टर की लड़की को ..."

अब की बार सिख की वाणी में कोई अनुगूज नहीं थी, बोला, "बाबू साहब, औरत की बेइज्जती सब के लिए शर्म की बात है। और बहिन ..." यहाँ सिख सुरैया की ओर मुखातिब हुआ, "आप से मैं माफी माँगता हूँ कि आप को यह सब सुनना पड़ रहा है।"

हिन्दु महाशय ने अचकचा कर कहा, "क्या-क्या-क्या-क्या ? मैंने इन से कुछ थोड़े ही कहा है ?" फिर मानो अपने को कुछ सँभालते हुए, और ढिठाई से कहा, "ये आपके साथ हैं ?"

सिख ने और भी रूखाई से कहा, "जी, अलीगढ़ तक में पहुँचा रहा हूँ।"

सुरैया के मन में किसी ने कहा, यह बिचारा शरीफ आदमी अलीगढ़ जा रहा है ! अलीगढ़ अलीगढ़ ... "उस ने साहस करके पूछा, "आप अलीगढ़ उतरेंगे।"

"हाँ।"

"वहाँ कोई हैं आपके ?"

"मेरा कहाँ कौन है ? लड़का तो मेरे साथ है।"

"वहाँ कैसे जा रहे हैं ? रहेंगे ?"

"नहीं, कल लौट आऊँगा।"

"तो ... तफ़रीहन जा रहे हैं।"

"तफ़रीह !" सिख ने खोये-से स्वर में कहा, "तफ़रीह !" फिर सँभल कर, "नहीं, हम कहीं नहीं जा रहे - अभी सोच रहे हैं कि कहाँ जायें - और जब टिकाऊ कुछ न रहे तब चलती गाड़ी में ही कुछ सोचा जा सकता है ..."

सुरैया के मन में फिर किसी ने कोंच कर कहा, "अलीगढ़ ... अलीगढ़ ... बेचारा शरीफ़ है ..."

उस ने कहा, "अलीगढ़ ... अच्छी जगह नहीं है। आप क्यों जाते हैं ?"

हिन्दु महाशय ने भी कहा, जैसे किसी पागल पर तरस खा रहे हों, "भला पूछिये ..."

"मुझे क्या अच्छी और क्या बुरी !"

"फिर भी - आप को डर नहीं लगता ? कोई छुरा ही मार दे रात में ... "

सिख ने मुस्करा कर कहा, "उसे कोई नजात समझ सकता है, यह आप ने कभी सोचा है ?"

"कैसी बात करते हैं आप !"

"और क्या ! मारेगा भी कौन ? मुसलमान मारेगा तो जहाँ घर के और सब लोग गये हैं वहीं में भी जा मिलूँगा; और अगर हिन्दु मारेगा, तो सोच लूँगा कि यही कसर बाकी थी - देश में जो बीमारी फैली है वह अपने शिखर पर पहुँच गयी - और अब तन्दरूसती का रास्ता शुरू होगा ।"

"मगर भला हिन्दु क्यों मारेगा ? हिन्दु लाख बुरा हो, ऐसा काम नहीं करेगा ..."

सरदार को एकाएक गुस्सा चढ़ आया : उस ने तिरस्कारपूर्वक कहा, "रहने दीजिए, बाबू साहब ! अभी आप ही जैसे रस ले-ले कर दिल्ली की बातें सुना रहे थे - अगर आप के पास छुरा होता और आप को अपने लिए कोई खतरा न होता, तो आप क्या - अपने साथ बैठी सवारियों को बख्श देते ? इन्हें - या मैं बीच पड़ता तो मुझे ?" हिन्दु महाशय कुछ बोलने को हुए पर हाथ के अधिकारपूर्ण इशारे से उन्हें रोकते हुए सरदार कहता गया, "अब आप सुनना ही चाहते हैं तो सुन लीजिए कान खोलकर। मुझ से आप हमदर्दी दिखाते हैं कि मैं आप का शरणार्थी हूँ। हमदर्दी बड़ी चीज है, मैं अपने को निहाल समझता अगर आप हमदर्दी देने के काबिल होते। लेकिन आप मेरा दर्द कैसे जान सकते हैं, जब आप उसी सांस में दिल्ली की बातें ऐसे बेदर्द ढंग से करते हैं ? मुझ से आप हमदर्दी कर सकते होते - उतना दिल आप में होता तो जो बातें आप सुनाना चाहते हैं उन से शर्म के मारे आप की ज़बान बंद हो गयी होती - सिर नीचा हो गया होता ! औरत की बेइज्जती औरत की बेइज्जती है, वह हिन्दु या मुसलमान की नहीं, वह इन्सान की माँ की बेइज्जती है। शेखूपुरे में हमारे साथ जो हुआ सो हुआ - मगर में जानता हूँ कि उस का मैं बदला कभी नहीं ले सकता - क्योंकि उस का बदला हो ही नहीं सकता ! मैं बदला दे सकता हूँ - और वह यही, कि मेरे साथ जो हुआ है, वह और किसी के साथ न हो। इसी लिए दिल्ली और अलीगढ़ के बीच इधर और उधर लोगों को पहुँचाता हूँ मैं, मेरे दिन भी कटते हैं और कुछ बदला चुका भी पीता हूँ, और इसी तरह, अगर कोई किसी दिन मार देगा तो बदला पूरा हो जायेगा - चाहे मुसलमान मारे, चाहे हिन्दु ! मेरा मकसद तो इतना है कि चाहे हिन्दु हो, चाहे सिख हो, चाहे मुसलमान हो, जो मैं ने देखा है वह किसी को न देखना पड़े; और मरने से पहले मेरे घर के लोगों की जो गति हुई, वह परमात्मा न करे किसी की बहू-बेटियों को देखनी पड़े !"

इस के बाद बहुत देर तक गाड़ी में बिलकुल सन्नाटा रहा। अलीगढ़ के पहले जब गाड़ी धीमी हुई, तब सुरैया ने बहुत चाहा कि सरदार से शुक्रिया के दो शब्द कह दे, पर उस के मुँह से भी बोल नहीं निकला।

सरदार ने ही आधे उठ कर ऊपर के बर्थ की ओर पुकारा । "काका, उठो, अलीगढ़ आ गया है ।" फिर हिन्दु महाशय की ओर देख कर बोला, "बाबू साहब, कुछ कड़ी बात कह गया हूँ तो माफ करना, हम लोग तो आप की सरन हैं ।